बानो का बाबू

रफ़ी शब्बीर

बानो का बाबू

संस्मरण

रफ़ी शब्बीर

दो लफ़्ज़

भोपाल की बेगम आबिदा सुल्तान की ज़िन्दगी पर फ़िल्म की तैयारी चल रही थी। स्क्रिप्ट के लिए रिसर्च वर्क करने रूमी जाफ़री साहब भोपाल आये हुए थे और रूमी जाफ़री साहब को जब यह मालूम हुआ कि मैंने कुछ नाटक लिखे हैं, जिसमें भोपाली किरदार हैं तो उन्होंने इस रिसर्च टीम में मुझे भी शामिल कर लिया। इस दौरान बातचीत में एक दिन मैंने रूमी भाई से खुशवंत सिंह के आर्टिकल का ज़िक्र किया, जो उन्होंने शकीला बानो भोपाली पर लिखा था, जिसमें लिखा था-

"मुख़्तसर यह है कि जब नवाबों, बेगमों और आला वज़ीरों के नामों को लोग भूल जाएँगे तो उस वक़्त भोपाल को शकीला बानो भोपाली के नाम की याद ज़रूर आएगी"

रूमी जाफरी साहब ने जब खुशवंत सिंह का आर्टिकल पढ़ा तो उन्हें शकीला बानो भोपाली का किरदार दिलचस्प लगा और उन्होंने मुझे यह ज़िम्मेदारी दी कि तुम अपने तौर पर इस सब्जेक्ट पर रिसर्च करो, अगर कुछ बात बनेगी तो काम करेंगे। मैं शकीला बानो भोपाली पर पहले ही पटियागोई लिखकर उसका भारत भवन भोपाल में फर्रूख शेर खान के डाइरेक्टशन में शो कर चुका था, जिस पर कई लोगों ने यह जुमला कहकर एतराज़ किया था कि तुमने एक तवाइफ़ को शायरा बना दिया, बल्कि इतनी

निगेटिव बातें उभरी कि मुझे लगा था कि मुझसे कुछ ग़लती हो गई, लेकिन जहाँ चाह होती है, वहाँ राह भी निकल आती है, फ़ैशन डिज़ाईनर मुमताज़ खान साहब, शकीला बानो भोपाली के रिश्तेदारों को जानते थे, बल्कि वो कई ऐसी बातें भी जानते थे जो मेरे इल्म में नही थीं, मैंने मुमताज़ भाई के ज़रिए शकीला बानो के रिश्तेदारों से मिलने की कोशिश की, मगर उनके किसी रिश्तेदार ने शकीला बानो के बारे में बात करने में कोई दिलचस्पी नहीं ली, तब मुमताज़ भाई ने मुझे बाबू खाँ के बारे में बताया कि वो भी शकीला बानो भोपाली के करीबी रहे हैं, लेकिन भोपाल में कहाँ रहते है? यह नहीं मालूम। शकीला बानो भोपाली के रिश्तेदार को बाबू खाँ का पता क्या बताते, उनका नाम सुनना भी पसन्द नहीं करते थे, तब मुझे माहिर भाई का ख़्याल आया, क्योंकि जब मैं उनकी मैंगज़ीन 'मुस्लिम विकास टाइम्स' से जुड़ा था तब वो कई बार शकीला बानो भोपाली का ज़िक्र कर चुके थे, बल्कि शकीला बानो भोपाली पर लिखी किताब भी सबसे पहले माहिर भाई ने ही मुझे पढ़ने को दी थी। जब माहिर भाई से मिला और बाबू खाँ का ज़िक्र किया तो माहिर भाई ने बाबू खाँ से मुलाक़ात करवाई और यह बताया कि यह शकीला बानो के साथी नहीं, बल्कि शकीला बानो ने बाबू खाँ से ही शादी की थी, इस बात पर मुझे यकींन नहीं आया तो उन्होंने निकाहनामा भी दिखाया और शकीला बानो का डेथ सर्टिफिक़ेट भी। अब कोई गुंजाइश बाकी नहीं रही थी मगर एक शक फिर भी दिमाग़ में था कि निकाहनामे में निकाह की तारीख 1976 की है और शकीला बानो

भोपाली पर लिखी गई दोनो किताबें 1976 के बाद पब्लिश हुई है, फिर दोनों किताबों में कहीं भी शकीला बानो ने बाबू खाँ से अपने निकाह का ज़िक्र क्यों नहीं किया? जब मैंने इस बात की तहकीकात की तो मोहब्बत की अनोखी कहानी सामने आने लगी, मैंने रूमी जाफ़री साहब को सारी बातें बताई तो रूमी भाई ने मुझ पर भरोसा करते हुए बाबू खाँ से रजिस्टर्ड एग्रीमेंट किया और मेरी ज़िम्मेदारी बढ़ा दी कि इस मोहब्बत की कहानी के हर पहलू की जाँच परख करूँ।

इस मोहब्बत की कहानी की सबसे पहली कड़ी बाबू खाँ ही थे और सबसे मुश्किल कड़ी भी बाबू खाँ थे, क्योंकि माशाल्लाह उनकी उम्र अस्सी साल है मगर आज भी ज़ेहन में शकीला बानो भोपाली इस तरह छाई हैं कि अपनी दास्ताँ सुनाते सुनाते रोने लगते है और फिर कुछ क़िस्से बार-बार दोहराने लगते थे। दूसरी मुश्किल यह थी कि बाबू खाँ पढ़े-लिखे नहीं है। वो शकीला बानो भोपाली से जुड़े हर इंसान को जानते थे, मगर पहचानते नहीं थे, जैसे उर्दू अफ़सानानिगार राजेन्द्र सिंह बेदी का फोटो देखकर पहचाने और बोले, “अरे यह तो सरदार जी हैं।” इसलिए मैंने शकीला बानो भोपाली से जुड़े सभी नामवर लोगों के फोटो अपने मोबाइल में अपलोड किये और हर फोटो उनको दिखाया था फिर उसके बारे में आडियो-वीडियो तैयार करता था, फिर बाबू खाँ की कही बातों को शकीला बानो भोपाली की किताबों या फ़िल्मों से मिलाकर देखता था। मैंने दो बार उनको मोबाइल भी खरीदकर दिया, जिसमें शकीला बानो भोपाली की फ़िल्में

अपलोड करके दे दी थीं कि इन फ़िल्मों को देख उनको कुछ याद आ जाए, दो मोबाइल गुम हो जाने के बाद मैं खुद उनके पास घंटों बैठकर उनकी बातें रिकार्ड करता फिर उस रिकार्डिंग में कहे गये क़िस्सों की कड़ियाँ जोड़ता।

कुछ ऐसे क़िस्से या बातें भी सामने आई, जो मैं इस कहानी का हिस्सा नहीं बनाना चाहता था, क्योंकि वो किसी के किरदार पर शक पैदा करती थीं ख़ासकर जो अब दुनिया में भी नहीं हैं। उनके बारे मे बात करना कन्ट्रोवर्सी खड़ी करना है, मगर फिर भी कुछ सवाल थे, जैसे जनाब रशीद अन्जुम ने अपनी किताब "जहान ए फ़िल्म में मुस्लिम अदाकारा" में शकीला बानो भोपाली का ज़िक्र करते हुए लिखा है कि ज़रीना उनकी बहन नहीं बल्कि नाजायज़ बेटी थी और यह बात भोपाल के कई नामवर लोगों ने भी कही थी। सबक़ी बातें सुनने के बाद मैंने बाबू खाँ के नज़रिये को लिखना मुनासिब समझा, क्योंकि दीगर लोगों ने सुनी-सुनाई बात कही थी, मगर बाबू खाँ ने हालात देखे थे और फिर ज़रीना की पैदाइश की तारीख अपनी सच्चाई आप बयाँ करती है।

ऐसे ही शकीला के किरदार पर कई लोगों ने अँगुली उठाई। एक नामवर शायर ने तो मुझसे यह कहा था कि वो अपने एक साज़िन्दे के साथ नाजायज़ ताल्लुक़ात हैं और जो क़िस्सा उन्होंने बयान किया था वो बाबू खाँ का ही था, इसलिए वो अपनी जगह ठीक थे, मगर हक़ीक़त कुछ और थी। फिर बाबू खाँ ने कई बार इस बात को दोहराया कि शकीला बानो अपनी मौत नहीं मरी, बल्कि उनको जहर दिया गया था मगर मैंने इस

बात को इस किताब में इसलिए शामिल नहीं किया कि यह भी एक कन्ट्रोवर्सी की वजह बन सकता है और इस बात का कोई गवाह भी नहीं है। शकीला की वालिदा जमीला बानो और बहन ज़रीना के बारें में भी कुछ अफ़साने हैं जो आधी हक़ीक़त आधा फ़साना है। उनको इस किताब का हिस्सा इसलिए भी नहीं बनाया कि ऐसा न हो कि पढ़ने वाले को यह महसूस हो कि बाबू खाँ और शकीला बानो भोपाली को फरिश्ता साबित करने में उनको शैतान बना दिया।

जब सारे क़िस्सों की कड़ी जोड़कर किताब की शक्ल देने का वक़्त आया तो कहानी शकीला बानो भोपाली की नहीं बल्कि बाबू खाँ और शकीला बानो भोपाली की मोहब्बत की दास्ताँ बन गई, जिसे मैंने अपने लफ्ज़ों में पिरोकर किताब की शक्ल दी।

और इस मोहब्बत की दास्ताँ का नाम 'बानो का बाबू' से बेहतर मुझे नही सूझा। शकीला के इस शेर के साथ

तमाशा कभी ये दिखाए मोहब्बत,

हमें वो बुलायें, बराए मोहब्बत।

वो ज़िन्दा थे, ज़िन्दा हैं, ज़िन्दा रहेंगे,

जिन्हें कह रहे हो, फ़ना ए मोहब्बत।

--रफ़ी शब्बीर

एक

1938, हाँ 1938 में ही पैदा हुआ था, ख़ाला बताती थीं तुम्हारे पैदा होने के कुछ दिन बाद ही तुम्हारी अम्मा भी अल्लाह को प्यारी हो गई और तुम्हारे अब्बा बम्बई में थे, किसी फ़िल्म वाली के यहाँ ख़ाना बनाने का काम करते थे उनको यह ख़बर भी नहीं थी कि उनके घर बेटा हुआ है और न ही यह ख़बर पहुचीं थी कि उनकी बीवी अब इस दुनिया में नहीं रही है। जब ख़बर मिली तो वो आये थे, मगर उनको बेटे की खुशी से ज़्यादा अपनी बीवी के अचानक जाने का ग़म था। सब रिश्तेदारों ने अब्बा को मशवरा भी दिया कि दूसरी शादी कर लो, बेटा भी पल जाएगा और तुम्हारा घर भी बस जाएगा। अब्बा ने घर तो बसा लिया, मगर मेरे पालने की ज़िम्मेदारी मेरी ख़ाला के जिम्मे ही डाल दी। मेरी ख़ाला सरदार बेगम, जिनके खुद चार बेटे थे और उनके बेटों के सर पर भी बाप का साया नहीं था, लेकिन वो अपनी माँ के फ़र्मा-बरदार बेटे थे, ख़ाला ने मुझे माँ की कमी महसूस नहीं होने दी, बल्कि मैंने अपनी अम्मी को देखा ही नहीं था ख़ाला में ही अपनी अम्मी नज़र आती थी और वो माँ जैसा ही ख़्याल रखती थीं बल्कि अनजान लोग भी यही समझते थे कि मैं उनका लाड़ला छोटा बेटा हूँ। ख़ाला के इस लाड़ प्यार ने कभी मुझे मदरसा जाने नहीं दिया। इस बात पर उनके बेटे भी नाराज होते थे। जब सब बच्चे मदरसे जा रहे है तो नोशे को भी जाना चाहिए।